

महाकवि कलिदास के महाकाव्यों में शब्द-योजना

श्री उदय नारायण सिंह

m0 नं0 1190 / 1 माधवपुरम, मेरठ उत्तर-प्रदेश भारत।

सार

संस्कृत साहित्य के दैदीप्यमान् नक्षत्र, कवि शिरोमणि, कविता विलास कविकुल गुरु कालिदास के नाम से अनेक रचनायें विख्यात हैं पर उनके सात ग्रन्थ ही प्रामाणिक माने गये हैं जिनमें चार काव्य हैं— ऋतुसंहार, मेघदूत, कुमार सम्भव और रघुवंश। तीन नाटक उनके नाम मालविकाग्नि मित्रम् विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञान शाकुन्तलाम् हैं। इनकी काव्य रचनाओं में रघुवंश एवं कुमार सम्भव महाकाव्य की श्रेणी में व ऋतुसंहार एवं मेघदूत खण्ड काव्य की श्रेणी में आते हैं। पाश्चात्य एवं भारतीय प्राचीन एवं नवीन विद्वानों की दृष्टि में कालिदास सर्वश्रेष्ठ अद्वितीय कवि हैं, क्योंकि सौन्दर्यशालिनी नाट्यकला में सर्वातिशायिनी मनोरम काव्य क्षमता में, सरस एवं मनोरम हृदयग्राही गीति काव्यों के उद्गारों में, मानव प्रकृति के अन्तस्तल के सूक्ष्म निरीक्षण में, वाह्य प्रकृति के संश्लेष एवं संजीव चित्रण में, काव्य की प्रसादिक एवं स्वाभाविक शैली में, उर्वर कल्पनाओं की अभूतपूर्व मञ्जुलता में, सरस मधुर भावों की अभिव्यक्ति में, श्रृंगार एवं करुण की सर्वातिगा अभिव्यंजना में, एवं सादृश्य मूलकअलंकारों की मुख्यतया उपमालंकार की सरस सहज सज्जा प्रस्तुत करने में विश्व का कोई भी कवि उनकी समता नहीं कर सकता। अनमोल के अनमोल हीरे हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में—“भारतीय धर्म, दर्शन, शिल्प और साधना में जो कुछ उदात्त है, जो कुछ दृप्त है, जो कुछ महनीय है और मोहन है उसका प्रयत्न पूर्व सजाया सवारा रूप कालिदास का काव्य है।”¹

मुख्य शब्द—शब्द विन्यास, अर्थ चमत्कार, अह्लाद—जनक ध्वन्यात्मक सौन्दर्य।

महाकाव्यों में शब्द-योजना

रघुवंश एवं कुमार सम्भव महाकाव्य कालिदास की अद्वितीय कृति है। महाकवि की सरस्वती में भारतीय संस्कृति मुखरित हुई है। ‘रघुवंश’ रस—प्रधान शैली का उदाहरण है। व्यंग्यार्थ प्रतिपादन की महाकवि की अपनी ही शैली है। काव्य में परिमार्जित, सुन्दर एवं रसपूर्ण शब्द एवं भावों की योजना से पाठक गण बरवस आकृष्ट हो जाते हैं। ‘कुमार सम्भव’ वस्तु वर्णन की दृष्टि से उत्कृष्ट कोटि का महाकाव्य है। श्रृंगार—रस की मधुर धारा में सहृदय पाठक गोते लगाने लगता है। महाकवि ने तपस्या और तपोवन का महत्व प्रदर्शित करते हुए धर्म की महत्ता का प्रतिपादन भी मुक्त कण्ठ से किया है। भाषा में प्रायः महाकवि ने बोलचाल के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। शब्दों के प्रयोग में पाण्डित्य—प्रदर्शन की चेष्टा कहीं नहीं की गयी है। शब्दों का चयन व विन्यास अत्यन्त सुन्दर, सटीक तथा प्रभावशाली हो चला है। शब्दों के प्रयोग में अर्थ—चमत्कार के साथ ही, आत्मानुभूति के स्पर्श की पूर्ण सामर्थ्य है। रसानुकूल शब्दों के प्रयोग के साथ ही महाकवि ने भाषा में आह्लाद—जनक ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का उचित प्रयोग किया है। सौन्दर्यमयी वक्रता के साथ ही, कवि प्रौढोक्ति के चमत्कार एवं भणिति—भङ्गी के वैदग्ध्य भी इन प्रयोगों में परिलक्षित होते हैं। अक्षोट, देवदारु, नमेरु, लोध्र, शाल आदि वृक्षों का बहुलता से प्रयोग महाकवि का वृक्ष—सम्बन्धी ज्ञान प्रमाणित करता है। कवि द्वारा

प्रयुक्त च, तु, खलु, हि, वा, द्वय आदि भी अदभुत व्यञ्जना की अभिव्यक्ति करते हैं। महाकवि चयनित शब्दों द्वारा अभीष्ट भाव प्रकट करने समर्थ हैं। सुकुमार भावों की अभिव्यक्ति में महाकवि सिद्ध हस्त हैं। इनकी भाषा संस्कृत के अन्य कवियों की तरह क्लिष्ट नहीं अपितु कोमल सरस एवं मधुर है। महाकवि द्वारा प्रयुक्त शब्द प्रभावोत्पादक चमत्कारजनक प्रसङ्गानुसार तो है ही सहृदय पाठक का अन्तःस्पर्श करने में भी सक्षम है। शब्दों के सुन्दर, चमत्कारपूर्ण, भावात्मक, सटीक एवं परिष्कृत पुक्त भाषा के प्रयोग में तो महाकवि सिद्धहस्त हैं ही शब्दों के प्रयोग जिनका अर्थ कोई अन्य पर्यायवाची शब्द नहीं ले पाते का प्रयोग तो देखते ही बनता है—

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।। (रघु0 1/1)

प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त ‘सम्पृक्तौ’ शब्द सम उपसर्ग पूर्वक पृच धातु से क्त प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। इस शब्द में द्विवचन का प्रयोग उचित ही है क्योंकि शब्द और अर्थ की चमत्कारोत्पादक समष्टि से ही काव्य का निर्माण होता है। ‘सञ्जीवनी’ में इनकी व्याख्या ‘नित्यसम्बद्धौ’ कहकर की गयी है। महाकवि ने पार्वती—परमेश्वर की सम्पृक्ति को शब्द—अर्थ की अभिन्नता द्वारा उपमित किया है इस शब्द द्वारा ऐसी अभिव्यञ्जना हो रही है कि पार्वती और परमेश्वर नारीश्वर रूप में अथवा एक साथ मिलकर प्रसन्न होकर कवि को काव्य रचना की सामर्थ प्रदान करें।

जिस प्रकार वाणी और अर्थ का रस-रूप आनन्द उत्पन्न करने में समान महत्व है उसी प्रकार दोनों नित्य सम्पृक्त हैं और दोनों (पार्वती-परमेश्वर) का संसार के उपादान रूप में समान महत्ता है। वक्रोक्ति जीवितकार आचार्य कुन्तक लिखते हैं कि "जहाँ अन्य प्रस्तुत वर्ण्यमान पदार्थ से अत्यन्त व्यवहित (अप्रस्तुत) पदार्थ में रहने वाली थोड़ी सी भी असमानता को किसी धर्म के अतिशय के प्रतिपादन हेतु गौणी वृत्ति से वर्णित किया जाता है, उसे उपचार-वक्रता कहते हैं और जिस कारण से रूपक आदि अलंकार सरसता को प्राप्त हो जाते हैं, उपचार के प्रधान होने से उसको उपचार वक्रता कहते हैं।²

'सम्पृक्तौ' पद से जो शब्द-अर्थ एवं पार्वती परमेश्वर की समानता को उपमालङ्कार को ध्यान में रखते हुए वाणी और अर्थ की अतिशय सिद्धि के लिए उपचार-वृत्ति से वर्णित किया है वह सहृदय पाठक अपूर्व आनन्द व चमत्कार को व्यक्त करने वाला 'उपचार वक्रता' का सुन्दर उदाहरण है। अलंकार की दृष्टि से यह वस्तु रूप 'शब्दशक्ति-मूला ध्वनि' का उदाहरण भी है।

औचित्यकार आचार्य क्षेमेन्द्र लिखते हैं कि, "सूक्ति में किसी विशेष पद का उचित प्रयोग उसी प्रकार सौन्दर्य वर्धक होता है जैसे चन्द्रमुखी युवती के माथे पर कस्तूरी का और श्यामा के माथे पर चन्दन का तिलक।"³ यहाँ 'सम्पृक्तौ' पद के अर्थोचित्य में चमत्कार भासित होता है और पार्वती-परमेश्वर की सम्पृक्ति के समान शब्द-अर्थ की सम्पृक्ति एक विच्छिन्ति, जो महाकवि के लिए श्रेष्ठ है, उससे उत्पन्न होती है।

पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता।

चतुर्दिगावर्जित सम्भृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम्।।

(रघु0, 6/76)

इस श्लोक में प्रयुक्त 'मृत्पात्रशेषाम्' पद की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं-

"मृत्पात्रमेव शेषो यस्यास्तामकरोत्। विश्वजिद्यागस्य सर्वस्वदक्षिणाकत्वादित्यर्थः।" इन्दुमती स्वयंवर के अवसर पर आज के पूर्वजों का वर्णन करते हुए दासी सुनन्दा कहती है कि महाराज दिलीप के पुत्र रघु, उनके राज्य का शासन करते हैं, जिस रघु ने विश्वजीत यज्ञ में अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी थी। अब उनके पास सम्पत्ति के रूप में केवल मिट्टी के बर्तन ही रह गये थे। इस शब्द के प्रयोग से महाराज रघु की अत्यन्त दानशीलता की अभिव्यक्ति हो रही है। अतः यह अपूर्वसौन्दर्याधायक -'रुद्धिवैचित्र्यवक्ता'⁴ का उदाहरण है।

पौरुषु सोऽहं बहुलीभवन्तमपां तरङ्गष्विव तैलविन्दुम्।

सोढुं न तत्पूर्वमवर्णमीशे आलानिक स्थाणुमिव द्विपेन्द्रः।। (रघु0, 14/38)

प्रजा के बीच फैलते हुए लोकापवाद रूपी अपयश को सहने में राम समर्थ नहीं है जिस लोकापवाद से उपजे आत्मग्लानि को केवल राम स्वयं ही अनुभव कर रहे हैं, जिसे वाणी द्वारा भाइयों के सामने भी व्यक्त नहीं किया जा सकता। राम को इस अपयश से पूर्व ऐसा कोई अपमान नहीं करना पडा था, यही उक्त श्लोक में प्रयुक्त 'तत्पूर्वम्' पद के प्रयोग का तात्पर्य है। इस प्रकार यहाँ यह शब्द सहृदय-संवेद्य कुछ अपूर्व ही सौन्दर्य एवं चमत्कार की अभिव्यक्ति कर रहा है। यहाँ प्रयुक्त 'तत्' पद 'संवृति-वक्रता' को पुष्ट करता है। कुन्तक के अनुसार- "जहाँ कोई वस्तु मात्र सहृदय संवेद्य है, वाणी से नहीं कही जा सकती है इस बात को प्रदर्शित करने के लिए संवरण की जाती है।⁵

तमङ्कमारोव्य शरीरयोगजैः सुखैर्निषञ्चन्तमिवामृतं त्वचि।

उपान्तसंमीलितलोचनो नृपश्चिरात्सुतस्पर्शरसज्ञातां ययौ।। (रघु0; 3/26)

राजा को विशेषण स्वरूप 'उपान्तसंमीलित लोचनः' पद कवि द्वारा स्व निर्मित एक अभूतपूर्व स्पन्दन देता हुआ ज्ञात होता है तथा वात्सल्यानुभूति का सुन्दरतम उदाहरण है। राजा दिलीप पुत्र रघु को गोद में बैठाकर अपने नेत्र-प्रान्तों को बन्द करके उसके स्पर्श-मात्र से आनन्दामृत बरसाने वाले जिस सुख का अनुभव किया, वह शब्दों द्वारा वर्णनीय नहीं, स्वहृदयसंवेद्य ही है। महाकवि द्वारा प्रयुक्त यह शब्द 'क्रिया-विशेषण-वक्रता' का सटीक उद्धरण है। वक्रोक्तिकार लिखते हैं- "जहाँ विशेषण के माहात्म्य से क्रिया अथवा कारक का सौन्दर्य उद्भूत होता है, वह 'विश्लेषण-वक्रता' कही जाती है।⁶ यह शब्द क्षेमेन्द्र द्वारा निर्दिष्ट 'स्वभावौचित्य की भी पुष्टि करता है। वे लिखते हैं- "स्वभाव का औचित्य काव्योक्तियों का भूषण है, उसी प्रकार जै युवतियों का अकृत्रिम विशेष लावण्य।"⁷

इस प्रकार यहाँ यह शब्द सहृदयहृदयाह्लादकारी कुछ अपूर्व ही सौन्दर्य एवं चमत्कार व्यंजित कर रहा है, तथा छन्दोपूर्ति में भी सहायक सिद्ध हुआ है। ध्वन्यालोक के अनुसार यह असंलक्ष्यक्रम द्योत्य 'समास ध्वनि का उद्धरण है।⁸

तदङ्गनिस्थन्दजलेन लोचने प्रमृज्य पुण्येन पुरस्कृतः सताम्।

अतीन्द्रियेष्वप्युपपन्नदर्शनों वभूव भावेषु दिलीपनन्दनः।।

(रघु0, 3/41)

उपर्युक्त श्लोक में प्रयुक्त 'निस्थन्दजलेन' पद की टीका करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं- "निस्थन्दो द्रवः स एवं जलम्। मूत्रमित्यर्थः। तेन.....।" 'गोमूत्र'

का व्यंजक यह शब्द 'रूढ़ि-वैचित्र्य-वक्रता' का उदाहरण है। इसके प्रयोग से यह व्यंजना हो रही है कि सर्वजन-पूजित महाराज दिलीप के पुत्र राजकुमार रघु 'नन्दिनी' के शरीर से निकले हुए जल (गोमूत्र) से नेत्र-प्रक्षालन करके साधारण दृष्टि द्वारा अगोचर पदार्थों को भी देखने में समर्थ हो गये अर्थात् उन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई। इस प्रयोग से महाकवि का आयुर्वेद सम्बन्धी ज्ञान भी प्रदर्शित होता है। यह तो सर्वविदित ही है, कि 'गोमूत्र' औषधि के रूप में प्रयोग किया जाता है, साथ ही कामधेनुसुता नन्दिनी की अलौकिकता का प्रतिपादन भी महाकवि ने कर दिया है। यहाँ यह शब्द 'अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनि' का उदाहरण है। 'गोमूत्र' शब्द सम्भवतः अश्लील होता है, अतः महाकवि ने सभ्यतावश 'निस्यन्दजल' शब्द प्रयुक्त किया है। इसके अतिरिक्त यह शब्द छन्दोपूर्ति में भी सहायक सिद्ध हुआ है।

कोशेनाश्रयणीयत्वमिति तस्यार्थसंग्रहः ।

अम्बुगर्भो हि जीमूतश्चातकैरभिनन्दते ।।

(रघु0, 96 / 60)

यहाँ महाकवि का पद-वैशिष्ट्य अद्भूत है। श्लोक में प्रयुक्त 'जीमूतः' पद की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं- "जीवनस्य जलस्य मूतः पुटबन्धो जीमूतो मेघः। 'मूड् बन्धने' पृषोदरादित्वात्साधुः।" अर्थात् जीवन स्वरूप जल को बांधने वाला मेघ। चूँकि जल से भरे हुए बादलों का ही 'चातक' स्वागत करते हैं, इसलिए महाराज अतिथि ने अर्थ-संग्रह किया, जिससे प्रजा से सम्मान भी प्राप्त हो तथा आश्रितों या दोनों को आश्रय प्राप्त हो सके। कवि यहाँ मेघ के पर्यायवाची किसी दूसरे शब्द का भी प्रयोग कर सकता था, किन्तु 'जीमूत' शब्द के प्रयोग से जिस महत्वपूर्ण व्यंजना की अभिव्यक्ति हो रही है, वैसी किसी अन्य शब्द के प्रयोग से न होती। अभिधेय का अन्तरतम होने से यहाँ यह शब्द 'पर्याय-वक्रता' को पुष्ट करता है।⁹

यह शब्द आनन्दबर्धन द्वारा निर्दिष्ट- 'विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि' का उदाहरण है। 'महाभारत' में यह शब्द मेघ¹, सूर्य² और ऋषि विशेष³ के लिए प्रयुक्त हुआ है।¹⁰

यः पूरयन्कीचकरन्ध्र भागन्दरी मुखोत्थेन समीरणेन ।

उद्गास्यतामिच्छति

किन्नराणां

तानप्रदायित्वमिवोपगन्तुम् ।। (कुमार सम्भव, 9/8)

प्रस्तुत श्लोक में प्रयुक्त 'कीचक' पद की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं- "कीचकाः वेणुविशेषाः।" वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धताः इत्यभारः।" यह शब्द चीक् धातु मर्षणे से वुन् प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ है। कीचक शब्द का अर्थ है 'छिद्रयुक्त बाँस।' जिस प्रकार बांसुरी बजाने से पहले कोई व्यक्ति मुख की वायु से बाँसुरी

में सुर भरता है, उसी प्रकार हिमालय अपने गुफा रूपी मुख की वायु से अर्थात् गुफाओं में आती हुई वायु से बाँस के छिद्रों को भरता हुआ गाने की इच्छा वाले किन्नरों को मानो तान प्रदान करने की इच्छा कर रहा है। 'कीचक' के स्थान पर कवि किसी अन्य पर्यायवाची शब्द का प्रयोग कर सकता था किन्तु जिस अर्थ एवं सौन्दर्य की व्यंजना यह विशिष्ट शब्द कर रहा है वैसी किसी अन्य शब्द के प्रयोग से नहीं होती। यहाँ यह शब्द 'विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि' का उदाहरण है।

अवगम्य कथीकृतं वपुः प्रियबन्धोस्तव निष्फलोदयः ।

बहुलेऽपि गते निशाकरस्तनुतां दुःखमनङ्ग! मोक्षयति ।।

(कुमार, 4/13)

उक्त श्लोक में प्रयुक्त 'कथीकृतम्' पद की व्याख्या करते हुए मल्लिनाथ लिखते हैं-

"कथीकृतमकथा कथा सम्पद्यमानं कृतं शब्द मात्रावशिष्टम्।" कामदेव के भष्म हो जाने पर केवल उसका नाम ही शेष रह गया, यह व्यक्त करने के लिए कवि ने 'कथीकृतम्' शब्द का प्रयोग किया है। 'रति विलाप' के प्रसंग में प्रयुक्त यह शब्द कुछ अपूर्व ही सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करता हुआ 'विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि' का सुन्दर उदाहरण है। उपर्युक्त विश्लेषण से महाकवि की अद्वितीय एवं अपूर्व शब्द चयन व पद विन्यास तथा शब्दों के प्रयोग में अर्थ चमत्कार के साथ ही आत्मानुभूति के स्पर्श की विलक्षण सामर्थ्य है। इन शब्दों द्वारा कवि-प्रतिभा का स्फुरण स्वयमेव होने लगता है। इनके माध्यम से महाकवि ने समाज के विभिन्न वर्गों के मनोविज्ञान का यथार्थ चित्रण तथा वाह्य-जगत के पदार्थों का सूक्ष्म निरूपण प्रस्तुत किया है। ये शब्द मानव मनोभावों के मनोवैज्ञानिक निरूपण में महाकवि की कुशलता को व्यंजना शक्ति द्वारा प्रमाणित करते हैं। इन शब्दों के गहन अध्ययन से वैदिक कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र, विविध दर्शनों, पौराणिक कथाओं, व्याकरण शास्त्र, राजनीति, आयुर्वेद, वर्णाश्रमधर्मादि इस चराचर संसार के असंख्य पदार्थों के विषय में महाकवि का सूक्ष्म एवं गम्भीर ज्ञान स्वतः प्रमाणित होता है। महाकवि के दोनों महाकाव्य उच्चकोटि के ध्वनिकाव्य है तथा उनकी अन्य विशेषताओं के साथ इन शब्दों का भी विशेष महत्व है। इन शब्दों के अभिधेयार्थ तो वे ही हैं, जो अन्य पर्यायवाची शब्दों से भी कहे जा सकते थे किन्तु इनकी व्यंजकता मात्र इन्हीं शब्दों के प्रयोग से स्पष्ट हो सकती थी अतः ये अपरिवर्तनीय दशा को प्राप्त हुए। महाकाव्यों में प्रयुक्त ये शब्द व्यंग्यार्थ के अपूर्व संयोजन के दर्पण हैं जिनके प्रयोग से काव्य में चमत्कार आ गया है।

कालिदास की कविता वस्तुतः ऐसी है, वह युग-युग से समस्त संसार के सहृदयों को मनोमुग्ध कर रही

हैं। किसी पुराने प्रशंसक ने कालिदास की प्रशंसा करते हुए कहा था कि— जब मैं प्राचीन में उद्भूत सच्चे कवियों की गणना करने लगता हूँ तो कनिष्ठिका अंगुली पर पहला नाम कालिदास आता है परन्तु कालिदास की बराबर करने वाला अन्य किसी कवि के न होने के कारण दूसरी उंगली पर किसी का नाम नहीं सूझा क्योंकि आज तक कोई उस टक्कर का कवि जन्मा ही नहीं, यही सोचकर उस उंगली का नाम अनामिका पड गया। तो आज कालिदास के समकक्ष दूसरा कोई कवि नहीं, अतः कवि गणना प्रसंग में उस अंगुली का नाम अनामिका सार्थक सिद्ध हो रहा है क्योंकि पहली अंगुली कालिदास और दूसरी कवि के अभाव में आज भी अनामिका (बिना नाम की) ही बनी हुई है।

पुरा कवीनां गणना प्रसंगे कनिष्ठिकाधिष्ठित कालिदासः।

अद्यापि तत्तुल्य कवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव ॥

श्रीकृष्ण कवि ने कमलिनी की भाँति अस्पृष्ट दोष वाली (1—दोषा=रात्रि में खिल न पाने वाली 2—दोष से दूर) मुक्ताहार सी गुण समूह से ग्रथित (1—गुण समूह = अनेक सुत्रों वाली, 2—गुणों = माधुर्यादि गुणों से युक्त) प्रिया की गोद के समान (2—विमर्द=संवाहन,

सन्दर्भ :-

1. कालिदास की लालित्य योजना द्वितीय संस्करण—1960 पृष्ठ—11।
2. वक्रोक्ति जीवितम, 2/13, 14।
3. औचित्य विचार चर्चा कारिका—11।
4. वक्रोक्ति जीवि0, 113।
5. वक्रोक्ति जीवि0, 2/16।
6. वक्रोक्ति जीवि0 2/15।
7. औ0वि0च0, कारिका—33।
8. ध्वन्या0, 3/16।
9. वक्रोक्ति जीवि0, 2/10।
10. (i) 'राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूताः द्वव वार्षिकाः' (महा0, भीष्म पर्व 19/39)।
(ii) 'वरुणः सागरोऽशुश्च जीमूतो जीवनेऽरिह (महा0, वनपर्व, 3/22)।
(iii) 'जीमूतस्यात्र विप्रर्षरूपतस्थे महात्मनः' (महा0, उद्योगपर्व, 111/23)।
मत्स्य—पुराण में यह शब्द 'पर्वत' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।
जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः।
आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति ॥ (मत्स्यपुराण, 52/75—76)
11. ए0वी0 कीथ—भाषान्तरकार डा0 मंगलदेव शास्त्री (द्वितीय संस्करण—1967 पृष्ठ—125)।

2—परीक्षण विमर्द से हृद्य आनन्द—दायक) भाषा कालिदास के अतिरिक्त अन्य किसी की नहीं है।”

अस्पृष्ट दोषा नलिनीव दृष्टा, हारावलीव ग्रथिता गुणौधैः।

प्रियांङ्कपालीव विमर्दहृद्या न कालिदासाद परस्य वाणी ॥

उनका (कालिदास का) मूलभूत गुण यह है कि वे अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना का अधिक आश्रय लेते हैं, उनके परवर्ती कवि प्रायः समझते थे कि तत् विषय पर कथनीय सब कुछ कह कर ही वे अपनी योग्यता प्रदर्शित कर सकते हैं, किन्तु कालिदास एक निश्चित प्रभाव उत्पन्न करके ही संतुष्ट हो जाते हैं और शेष सब बातें व्यञ्जना के लिये छोड़ देते हैं—¹¹

कवि शिरोमणि कालिदास सचमुच धन्य हैं, जिनकी कीर्ति उनकी वाणी के समान शुद्ध बुद्ध पवित्र, अमृतोपम एवं मधुर और सुस्वादु है। वाणी के वहाने सूर्यवंश का वर्णन कर उनकी कीर्ति समुद्रपार तक पहुंची है। प्रसाद की प्रचुरता, माधुर्य का समुचित सन्निवेश, भावों का सौष्टव अलंकारों की अपूर्वता एवं रमणीयता तथा भाषा का लालित्य व अपूर्व शब्द चयन इन सब गुणों ने कालिदास की कविता को विश्ववन्ध बना दिया है।